२७वीं गाथा हो गयी। २६ में कहा था कि यह आत्मा, **सहज परम पारिणामिकभाव की विवक्षा का आश्रय करनेवाले सहज निश्चयनय की अपेक्षा से,...** त्रिकाल शुद्धस्वभाव से कभी भ्रष्ट नहीं हुआ। नित्य, अनित्य निगोद में लिया, ऐसा कल ऐसा डाला था। त्रिकाल ज्ञायकभाव नित्य, इस निगोद से लेकर अनित्य पर्याय में आया नहीं, ऐसी बात की थी। अर्थ ऐसा है। भाव में कोई अन्तर नहीं। आत्मा सहजस्वभाव, एकरूप परमभाव वह स्वयं अपने स्वभाव से निगोद से लेकर सिद्ध की पर्याय में कहीं आया नहीं, च्युत हुआ नहीं - ऐसा वह आत्मद्रव्य ध्यान करनेयोग्य है।

**मुमुक्षु :** ध्यान करनेयोग्य तो पर्याय हो गयी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पर्याय है, परन्तु पर्याय का विषय यह है न।

**मुमुक्षु :** पर्याय का.... नहीं करना।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ध्यान करना है, मोक्षमार्ग है, वह सब पर्याय है।

**मुमुक्षु :** कथन नहीं करने का, एक ही करने का। ध्रुव.. ध्रुव.. ध्रुव..

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परन्तु ध्रुव.. ध्रुव कौन निश्चित करता है ? ध्रुव का निर्णय कौन करता है ? पर्याय करती है या ध्रुव करता है ?

**मुमुक्षु :** पर्याय के सामने देखना नहीं। भगवान ने इनकार किया है पर्याय के सामने देखने को।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** समाने देखने को, परन्तु यह सामने देखती है, वह पर्याय है। इसका इनकार किया है ? ऐई ! कान्तिभाई ! क्या है ? यह कुछ प्रश्न उठा लगता है। यहाँ तो कहते हैं... यह तो नित्य निगोद, अनित्य इसके साथ सम्बन्ध था, इसलिए जरा फिर से (लिया)। वस्तु एक ज्ञायकभाव शुद्ध परमस्वभाव, परमपारिणामिकभाव जिसमें पर्याय नहीं, उसमें नहीं, परन्तु निर्णय और अनुभव करती है पर्याय।

**मुमुक्षु :** मैं ध्रुव हूँ, ऐसा तुम कहते नहीं और तुम ऐसा कहते हो कि ध्रुव के समक्ष और शुद्धपने परिणमे बिना धर्म होता नहीं, ऐसा कहते हो।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परन्तु यह तो वही का वही हुआ न, उसमें क्या हुआ ? त्रिकाली ध्रुव के सन्मुख होकर दशा प्रगट किये बिना तीन काल में धर्म नहीं होता।

**मुमुक्षु :** ऐसा आप किसलिए कहते हो ? मैं ध्रुव हूँ.. मैं ध्रुव हूँ.. मैं ध्रुव हूँ... ऐसा कहा करो। मैंने कहा परन्तु यह कहना, वह पर्याय है। मैं ध्रुव हूँ, ऐसा कहना, वह भी पर्याय है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** क्या है ? चेतनजी ! परन्तु मैं ध्रुव हूँ, यह जानता कौन है ? यह ध्रुव जानता है ? ऐई !

**मुमुक्षु :** उसे कहनेवाला कौन ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पर्याय। यहाँ तो आत्मा पूर्णानन्द प्रभु एक समय में...

**मुमुक्षु :** .....ऐसा किये बिना धर्म नहीं होता, ऐसा किसलिये कहते हो ? ध्रुव कहो।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परन्तु ध्रुव है, ऐसा जाननेवाला कौन है ?

**मुमुक्षु :** परन्तु उसका क्या काम है ? वह तो पर्याय हुई।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐ... भीखाभाई ! कैसा ? जेठाभाई ! क्या है यह ? किसके साथ विवाद उठा है।

**मुमुक्षु :** स्वयं के साथ।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आत्मा... यहाँ तो सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ ऐसा फरमाते हैं और ऐसा है कि यह आत्मा त्रिकाल ध्रुवस्वभाव, परमस्वभाववाला तत्त्व, यही आत्मा है। उसका ध्यान करना अर्थात् उसकी दृष्टि करना और ज्ञान करना, वह धर्म है। यह देव, गुरु, शास्त्र की भक्ति करना, यह सब धर्म नहीं है।

**मुमुक्षु :** आप तो इतना ही कहो, अधर्म शब्द नहीं बोलते।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** इस बात के लिये तो यह बात है। यह भी अभी इसमें आयेगा। समझ में आया ? देव-गुरु-शास्त्र तो पर है, उनके सन्मुख देखकर जितनी भक्ति होती है, वह सब राग है, पुण्य है; धर्म नहीं। समझ में आया ? तीन लोक के नाथ तीर्थंकर सर्वज्ञ हो, समवसरण में विराजमान हों, सौ इन्द्र पूजते हों, उनकी भी भक्ति, उनकी श्रद्धा, उनके सन्मुख का ज्ञान, वह सब पराधीन और राग है।

**मुमुक्षु :** शास्त्र का अभ्यास वह ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** शास्त्र का अभ्यास, वह राग और पराधीन है।

**मुमुक्षु :** इसके बिना काम नहीं चलता।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** इसके बिना चलाने की बात यहाँ है। बात यह है। दुनिया को सत्य हाथ ही नहीं आया। समझ में आया ? ऐई... बसन्तीलालजी ! आहा..हा.. ! कैसा मार्ग है ? मार्ग को अभी तो सुना नहीं। ऐसा मानो यह भक्ति करते हैं भगवान की, गुरु की और आत्मा का कल्याण हो जायेगा। धूल में भी नहीं होगा। कल्याण नहीं होगा तो गति एक भव नहीं मिटेगा। ऐई !

**मुमुक्षु :** .....साधन नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** भव के नाश का वह उपाय ही नहीं। सच्चा अन्तर भगवान आत्मा भी... इसलिए लिया न **परम पारिणामिकभाव की विवक्षा का आश्रय करनेवाले...** निश्चयनय से भगवान नित्य और अनित्य निगोद की पर्यायों से भिन्न है। यह २६वीं गाथा में आ गया। अब दूसरी बात। अब अपने चलता है वह। ४९, वह पंचास्तिकाय का श्लोक आया न ? उसमें भी जरा लेना है, देखो ! पहले १२वाँ कल लिया गया है, परन्तु उसमें जरा विस्तार है।

यह स्कन्ध है न रजकण, ये जत्था, जड़, मिट्टी, अंगुली, पैसा, दाल, भात, सब्जी, कर्म, वाणी इनमें एक परमाणु जो रहा हुआ है, एक पॉइन्ट रजकण उसमें पृथक्, वह **एक रसवाला, एक वर्णवाला, एक गंधवाला और दो स्पर्शवाला, वह परमाणु, शब्द का कारण है;...** आत्मा भाषा का कारण है नहीं। आत्मा बोलता नहीं और आत्मा से भाषा होती नहीं। जगत के सत्व की खबर नहीं होती और ऐसा का ऐसा परिभ्रमण में भटकते हुए धर्म हो जाये (ऐसा नहीं होता)। समझ में आया ? ऐ कान्तिभाई ! शब्द का कारण परमाणु है, आत्मा नहीं। यह आवाज उठती है, वह आत्मा से नहीं। आहा..हा.. ! जड़ की दशा जड़ से उत्पन्न होती है।

**अशब्द है और स्कन्ध के भीतर हो, तथापि द्रव्य है ( अर्थात्, सदैव सर्व से भिन्न, शुद्ध एक द्रव्य है )।** यहाँ तो वह शुद्ध शब्द आया, इसलिए जरा अधिक स्पष्ट करना

है कि है रजकण इसके (स्कन्ध के) अन्दर, परन्तु है वह अकेला स्वतन्त्र; इसलिए उसे शुद्ध कहते हैं। है तो उसकी पर्याय विभाविक।

**मुमुक्षु :** दूसरे से भिन्न।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** दूसरे से भिन्न; इसलिए शुद्ध कहा जाता है। नहीं तो पर्याय शुद्ध नहीं है। उसमें रहा हुआ रजकण, जो अन्तिम पाइन्ट। वह तो बहुत रजकणों का पिण्ड है, टुकड़ा करते.. करते... करते... अन्तिम पाइन्ट (रहे), वह जो उसमें है, वह शुद्ध है। शुद्ध का अर्थ (यह कि) पर के सम्बन्धरहित है। है तो विभाविक पर्याय। परमाणु उसमें रहा हुआ है, वह विभाविक अवस्थावाला है। विकारी अवस्थावाला है। वह गुण और पर्याय उसमें विकारी है, तथापि उसे शुद्धद्रव्य कहा गया है। समझ में आया? आहा..हा..! ऐसी बात का कहीं ज्ञान नहीं होता, समझ नहीं होती और उसे धर्म हो जाये, (ऐसा नहीं होता)। अनन्त काल में चौरासी के (अवतार में) भटकने का मार्ग है।

**मुमुक्षु :** शुद्ध क्यों कहा?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कहा न। यह क्या कहा? पर के सम्बन्धरहित अपने चतुष्टय में रहा है, इस अपेक्षा से शुद्ध कहा है।

**मुमुक्षु :** अच्छे-बुरे शब्द जो होते हैं....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** शब्द जड़ से होते हैं।

**मुमुक्षु :** अच्छा-बुरा...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** शब्द में अच्छा-बुरा है ही नहीं। वह तो वाणी जड़ है, धूल है।

**मुमुक्षु :** शास्त्र तो कहते हैं कि यह सुनो, वह नहीं सुनो।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं सुनो, इसका अर्थ कि सुनने में विकल्प आता है, वह राग है, धर्म नहीं।

**मुमुक्षु :** शास्त्र पढ़ना-सुनना।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पढ़ने-सुनने में राग है, ऐसा कहते हैं।

**मुमुक्षु :** ऐसा कहते हैं, कुशास्त्र नहीं पढ़ना और सुशास्त्र पढ़ना।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह बात व्यवहार से। शुभविकल्प है। शुभराग की अपेक्षा से बात है। सुशास्त्र पढ़े और सुने तो भी शुभराग है, पुण्य है; धर्म नहीं।

**मुमुक्षु :** कुशास्त्र कोई स्वयं तो नहीं हुए न?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** शास्त्र तो जड़ है। उससे हुए हैं। शास्त्र, शास्त्र से हुए हैं, जड़ से (हुए हैं); आत्मा से नहीं।

**मुमुक्षु :** वाणी निमित्त नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परन्तु वाणी तो जड़ है।

**मुमुक्षु :** यहाँ पुद्गल लिखा है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह भी पुद्गल है, जड़ है। वह कहाँ आत्मा है? वाणी उठती है, वह जड़ है, वह तो आवाज है, रजकण की आवाज है, आत्मा की नहीं। आत्मा तो उससे भिन्न है। वस्तु की स्थिति की खबर नहीं होती। पोपटभाई! भगवान क्या कहते हैं? यह तो मानो कोई भगवान दे देंगे और गुरु दे देंगे, भक्ति करो, अपने दान दो, कल्याण हो जायेगा... धूल में भी कल्याण नहीं होगा। एक भी भव नहीं घटेगा। तेरे लाख-करोड़ दान दे और भक्ति करके मर जा सौ-सौ वर्ष से, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? एक भी भव नहीं घटेगा। ऐसे के ऐसे अनन्त भव रहेंगे। पर की भक्ति और पर से मुझे लाभ होगा, इस मान्यता में मिथ्यात्वभाव है। ऐई! पण्डितजी!

यहाँ तो अपने इतना (कि) यह शुद्धद्रव्य से, कहा था न? रात्रि को प्रश्न उठा था न कि शुद्ध से क्या? अकेला द्रव्य है, इसलिए शुद्ध कहना? यहाँ तो मूल तो गुण-पर्यायवाला द्रव्य लिया है। शुद्ध परमाणु। यह नहीं भले परन्तु द्रव्य है न। स्वतन्त्र द्रव्य सिद्ध करना है न? भले कोष्ठक में लिखा, परन्तु उसका अर्थ अपने को ऐसा लेना, ऐसा।

**मुमुक्षु :** इसमें है न पंचास्तिकाय में।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** शुद्ध शब्द नहीं। नहीं। शुद्ध शब्द नहीं। यह देखा, ८१ (गाथा) है। गुण-पर्याय मुझे तो देखना है इसमें। यह संस्कृत में है। गाथा है न, देखो **यह परमाणु द्रव्य में गुण-पर्याय वर्तने का ( गुण और पर्याय होने का ) कथन है।** अकेले द्रव्य की बात नहीं। भाई! यहाँ, संस्कृत है यह। गुण-पर्याय वर्तने का कथन है। **और स्निग्ध-**

**रूक्षत्व के कारण बन्ध होने से अनेक परमाणुओं की एकत्वपरिणतिरूप स्कन्ध के भीतर रहा हो, तथापि स्वभाव को नहि छोड़ता हुआ, संख्या को प्राप्त होने से ( अर्थात् परिपूर्ण एक की भाँति पृथक् गिनती में आने से ) अकेला ही द्रव्य है।** बस, शुद्ध शब्द इसमें नहीं, परन्तु अब इसमें शुद्ध डाला है, उसका अर्थ समुचित बैठना चाहिए इसलिए। समझ में आया ? ऐई ! आहा..हा.. ! अब कहते हैं। १३वाँ श्लोक है।

**वसुधान्त्यचतुःस्पर्शेषु चिन्त्यं स्पर्शनद्वयम्।**
**वर्णो गन्धो रसश्चैकः परमाणोः न चेतरे।।**

परमाणु अर्थात् एक पाइन्ट, रजकण। वह भी स्वतन्त्र वस्तु है। **परमाणु को आठ प्रकार के स्पर्शों में अन्तिम चार स्पर्शों में से दो स्पर्श, एक वर्ण, एक गंध तथा एक-एक रस, समझना; अन्य नहीं।** परमाणु का स्वरूप स्वतन्त्र है। उसका परिणमन कराये, भाषा हो, वाणी हो, चलना हो, वह स्वतन्त्र जड़ से होता है। आत्मा से बिल्कुल नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। अज्ञानी को वह क्रिया चलने की, बोलने की मेरी है-ऐसा माने, वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। समझ में आया ?

**मुमुक्षु :** व्यवहार से तो कहा जाता है न ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बिल्कुल व्यवहार से नहीं। व्यवहार से कैसा ? व्यवहार अर्थात् निमित्त का कथन है। साथ में कौन था, इतना बताने को (कथन है)। उससे हुआ नहीं। परमाणु से हुई यह भाषा है। परमाणु से हुआ यह शरीर है। यह चले ऐसे-ऐसे तो वह परमाणु से स्वयं चलता है। आत्मा के कारण नहीं। वह जड़ मुझसे चले, माने, वह अजीव को जीव मानता है। मिथ्यात्व महापाप है। पाखण्ड का, मिथ्यात्व का महापाप है। कहो, समझ में आया ? वीतरागमार्ग है, भाई ! इसने सुना नहीं और करने की दरकार ही नहीं की। कहीं सरल मिल जाये, दान मिले, पूजा या भक्ति में से धर्म हो जाये, ऐसा नहीं है।

*(किसी श्रोता को आते देखकर कहा)* नजदीक आओ। बीच में जगह बहुत है। सब द्वारिका जाने निकले हैं ?

**मुमुक्षु :** हाँ, द्वारिका की बाजु में....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ठीक। यहाँ का विषय जरा सूक्ष्म बहुत है। सूक्ष्म है। अब यहाँ अपने श्लोक लेते हैं। श्लोक है न ? ४१, ४१वाँ श्लोक, भाई !

## श्लोक-४१

और ( २७वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज, श्लोक द्वारा भव्यजनों को शुद्ध आत्मा की भावना का उपदेश करते हैं ) —

( मालिनी )

अथ सति परमाणोरेक-वर्णादि-भास्वन्,
निजगुणनिचयेऽस्मिन् नास्ति मे कार्यसिद्धिः।
इति निज-हृदि मत्त्वा शुद्ध-मात्मान-मेकं,
परम-सुख-पदार्थी भावयेद्भव्य-लोकः ।।४१।।

---

(वीरछन्द)

वर्ण आदि निज गुण समूह में सदा प्रकाशित परमाणु।
किन्तु नहीं उसमें किञ्चित् भी कार्यसिद्धि मम मात्र अणु॥
इस प्रकार अपने अन्तर में, जो जन यह निश्चित माने।
परम सौख्यपद का वाञ्छक, वह भव्य निजातम को जाने॥४१॥

*श्लोकार्थ :*—यदि परमाणु, एक वर्णादिरूप प्रकाशते ( ज्ञात होते ), निज गुणसमूह में है, तो उसमें मेरी ( कोई ) कार्यसिद्धि नहीं है ( अर्थात्, परमाणु तो एक वर्ण, एक गंध आदि अपने गुणों में ही है, तो फिर उसमें मेरा कोई कार्य सिद्ध नहीं होता ); इस प्रकार निज हृदय में मानकर, परम सुखपद का अर्थी भव्यसमूह, शुद्ध आत्मा को एक को भाये॥४१॥

---

### श्लोक-४१ पर प्रवचन

---

अथ सति परमाणोरेक-वर्णादि-भास्वन्,
निजगुणनिचयेऽस्मिन् नास्ति मे कार्यसिद्धिः।
इति निज-हृदि मत्त्वा शुद्ध-मात्मान-मेकं,
परम-सुख-पदार्थी भावयेद्भव्य-लोकः ।।४१।।

यह जड़ है जड़। यह मिट्टी है। अंगुली, वाणी, दाल, भात, सब्जी, यह मकान, ये सब जड़ तत्त्व हैं। शरीर, वह जड़ तत्त्व-मिट्टी तत्त्व है। वह कहीं आत्मा नहीं। आत्मा अन्दर भिन्न तत्त्व है, यह (शरीर) भिन्न तत्त्व है। यह तो जड़ मिट्टी तत्त्व है। इस मिट्टी में कहते हैं कि इसका जो परमाणु है, एक पाईन्ट अन्तिम। यह तो बहुत रजकण बनकर अंगुली हुई है। यह कहीं आत्मा नहीं है। आत्मा तो अन्दर अरूपी ज्ञानघन, सच्चिदानन्द, निर्मलानन्द शुद्ध भिन्न है। उस आत्मा में, गुण में मैं रहूँ, ऐसा बताने को, यहाँ ये रजकण उसमें जो है, **एक वर्णादिरूप प्रकाशते ( ज्ञात होते ), निज गुणसमूह में है,...** ये रजकण जो यह है उनकी शक्ति के गुणसमूह में रहे हुए हैं, आत्मा में नहीं। **तो उसमें मेरी ( कोई ) कार्यसिद्धि नहीं है...** इन जड़ के गुणों में रहा हुआ जड़, उसके कारण मेरी कार्यसिद्धि क्या? मैं तो आत्मा हूँ, मेरा स्वरूप तो आनन्द और सच्चिदानन्द ज्ञानघन है।

कहते हैं कि परमाणु में यह होता है, उसमें मेरा क्या? **इस प्रकार निज हृदय में मानकर, परम सुखपद का अर्थी...** जिसे आत्मा का आनन्द चाहिए है। **परम सुखपद का अर्थी भव्यसमूह, शुद्ध आत्मा को एक को भाये।** भाषा में। अभी इसमें बहुत अर्थ है। इसका अर्थ अभी लम्बा होता है। रतिभाई! यह पृष्ठ फिराने से नहीं चलेगा। अभी इसका अर्थ होता है। क्या कहा? उस ओर है। ५९ पृष्ठ पर। यह पृष्ठ फिराया, इसलिए मैंने इनकार किया।

यहाँ कहते हैं, रजकण - यह एक-एक परमाणु मिट्टी है, ये इनके गुण में, शक्ति के गुण में रहे हुए हैं। ये आत्मा में नहीं। इसलिए यहाँ कहते हैं कि जड़ उसके गुणों में रहा है, ऐसा जानकर हम तो हमारे गुण में रहेंगे। हम भगवान आत्मा हैं, उसमें आनन्द और ज्ञान है, शान्ति है, तो वे रजकण जब उनकी शक्ति में, उनकी दशा में रहे हैं तो उनके कारण कहीं हमारी कार्यसिद्धि नहीं है। हम हमारे गुण में रहें, यह हमारी कार्यसिद्धि है। पोपटभाई! सूक्ष्म बात है, भाई! इसने तत्त्व की बात सुनी नहीं।

**सुखपद का अर्थी...** आत्मा आनन्दस्वरूप है, सच्चिदानन्द है। सत् अर्थात् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का उसका रूप है। ऐसे आनन्द का जो अर्थी है। **भव्यसमूह, शुद्ध आत्मा को एक को भाये।** भाषा देखो! इन देव-गुरु-शास्त्र को भावे, यह नहीं - ऐसा कहते हैं, क्योंकि देव-गुरु-शास्त्र की भावना करे और उनकी भक्ति आदि (करे), वह

सब राग और शुभ है, पुण्य है; धर्म नहीं और वह पुण्य करते-करते धर्म होगा, ऐसा भी नहीं। सूक्ष्म बात है। समझ में आया?

**सुखपद का अर्थी...** भगवान आत्मा आनन्द गुणवाला है। जैसे परमाणु अत्यन्त स्पर्श के गुणवाला है, तो मैं भी एक आनन्द के गुणवाला हूँ। जैसे परमाणु उसके जड़ के गुण में रहे हैं, तो मैं भी मेरे आनन्दगुण में रहूँ। इसमें मेरी कार्यसिद्धि है। अरे! गजब बातें आयीं।

कहते हैं, सुखपद का अर्थी, **परम सुखपद का अर्थी...** अतीन्द्रिय आनन्द भगवान मुक्ति आत्मा का स्वरूप। वह अतीन्द्रिय आनन्द अन्दर आत्मा में है। उस आनन्दमय आत्मा है। ऐसा भव्य जीव, **सुखपद का अर्थी भव्यसमूह,...** भव्यसमूह। देखो! बहुत जीवों का झुण्ड, भव्यों का। यह काम करे, कहते हैं। भव्यसमूह - योग्य जीव जो जीव हैं, वे शुद्ध आत्मा को परमानन्द प्रभु ध्रुव चैतन्य आनन्द हूँ, उसे एक को भजे। उसकी एक की सेवा करे। पर की नहीं, देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति से कहीं कल्याण नहीं। यह राग हो, दया, दान, व्रत, भक्ति का (राग हो), उससे कल्याण नहीं। इस एक समय की वर्तमान दशा को भजने से ही कल्याण नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

यहाँ तो आत्मा की बात है, भाई! यह आत्मा अन्दर प्रभु है। सच्चिदानन्द मूर्ति है। इसमें अनन्त-अनन्त शक्तियाँ हैं। इसमें अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर भरा हुआ है। ऐसे **भव्यसमूह, शुद्ध आत्मा को एक को भाये।** लो, क्या कहा, समझ में आया? देखो! वापस **शुद्ध आत्मा को एक को भाये।** मैं अखण्ड आनन्द शुद्ध चैतन्य धातु, चैतन्यस्वरूप हूँ। ऐसे स्वरूपसन्मुख होकर उसका एकाग्र होना, उसकी भावना ध्यान में करना। वर्तमान ज्ञान की दशा को ध्रुव का ध्येय, विषय बनाना, उसे भावना कहा जाता है, उसका नाम धर्म है। आहा..हा..! समझ में आया? शुद्ध आत्मा को भव्य का झुण्ड, बहुत भव्य जीव, लायक जीवों को क्या करना? कल्याण करना हो तो क्या करना? उन्हें धर्म करना हो तो क्या करना? आनन्दमूर्ति प्रभु आत्मा है, उसका भजन करना अर्थात् उसमें एकाग्रता करना। आहा..हा..!

**मुमुक्षु :** शुद्ध आत्मा एक कैसा है, यह पहले जानना पड़ेगा।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** शुद्ध आत्मा क्या है? एक क्या है? पर्याय क्या है? राग क्या?

संयोग क्या ? यह तो जानना पड़े न। नौ तत्त्व की भिन्नता जाने बिना एक तत्त्व में आयेगा कहाँ से ? समझ में आया ? बहुत सूक्ष्म, भाई ! अनादि से ऐसा तो (जाना नहीं)।

आत्मा (का) अपना स्वभाव सच्चिदानन्द है, उसका ध्यान छोड़कर इसने दूसरे ध्यान अनन्त बार किये। उसमें कुछ हुआ नहीं। ये चौरासी के जन्म-मरण ऐसे के ऐसे खड़े हैं। परमात्मप्रकाश में तो ऐसा भी कहा है, भवो-भवो जिनवर पूजा। आता है न ? भव-भव में जिनवर तीर्थंकर की पूजा अनन्त बार की। व्यर्थ गयी। राग है न, वह कहाँ धर्म था ? ऐई ! प्रकाशदासजी ! आहा..हा.. ! यह तो सम्यग्ज्ञानदीपिका में आता है। तीर्थंकरदेव ऐसे भगवान विराजते थे। मणिरत्न के दीपक, हीरे की थाली, कल्पवृक्ष के फूल (लेकर) ऐसी भगवान की पूजा समवसरण में अनन्त बार की, परन्तु कुछ आत्मा का हुआ नहीं। वह तो शुभराग है, विकल्प है, वह तो पुण्य है, धर्म नहीं। आहा..हा.. !

**मुमुक्षु :** आत्मा नहीं मिला, परन्तु ऐसे संयोग तो मिले न ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वे मिले नहीं। समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, भाई ! सम्प्रदाय में अभी तो ऐसी बड़ी गड़बड़ उठी है कि बाहर के मार्ग में पड़े हैं और कहे इसमें से धर्म होगा। कितने ही दया, दान, व्रत और तप करके धर्म मानते हैं। कितने ही भगवान की भक्ति और गुरु की भक्ति से धर्म मानते हैं। सब मिथ्यादृष्टि विपरीत मार्ग में हैं। समझ में आया ? यह अनादि का भटकने का मार्ग है। उसी-उसी मार्ग में वे हैं।

**मुमुक्षु :** सम्यग्दृष्टि भगवान की भक्ति तो करता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह तो विकल्प आता है और जानता है कि यह हेय है। हेय है, परन्तु वस्तु में स्थिर नहीं हो सकता, इसलिए अशुभ से बचने को ऐसा आता है परन्तु वह हेय है। आदरणीय नहीं। स्वभाव आदरणीय है। भाषा देखो न ! जेठाभाई ! जेठाभाई ने बहुत भक्ति की है और बहुत उपवास किये थे। उपधान करके सूख गये थे। धूल में भी उसमें कुछ नहीं हुआ। उपधान में तो बहुत भगवान को... क्या कहलाता है खमासणा। ओहो.. ! खमासणा। बड़ी मजदूरी है। आहा..हा.. !

कहते हैं, भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर कहते हैं कि जो भव्यसमूह जीव हैं, वे तो **शुद्ध आत्मा को एक को भाये।** आहा..हा.. ! जिसमें अनन्त शक्ति पड़ी है, बेहद

गुण आनन्द शान्ति पड़े हैं। ऐसा जो भगवान आत्मा, उसके अन्दर में एकाग्र होकर आत्मा की भावना करे, इसका नाम भगवान धर्म और मुक्ति का उपाय कहते हैं। आहा..हा..! इसने अनन्त काल भटकने में गँवाया चार गति में। धर्म के नाम से भी अधर्म सेवन किया और माना धर्म। सुनने को मिलता नहीं। वहाँ तो दूसरा सुने, करो भक्ति, धुन लगाओ। भगवान की भक्ति करो, धुन लगाओ। वह राग की धुन है। समझ में आया?

एक आत्मा अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु अन्दर पूर्णस्वरूप आत्मा है। शान्ति से भरपूर तत्त्व है। आहा..हा..! वह अतीन्द्रिय आनन्द का धाम प्रभु आत्मा है। उसकी अन्दर दृष्टि लगाकर, उसकी एकाग्रता की भावना करने का नाम मुक्ति का उपाय है। कहो, रतिभाई! शब्द तो याद रहते हैं या नहीं? रतिभाई! हमारे आये हैं न, भाई! राजभा! रतिभाई, चम्पकभाई के भाई। पोपटभाई! पहिचानते हो या नहीं? ....उसके पुत्र हैं रतिभाई। चम्पकभाई के भाई। इन्हें बहुत प्रेम है। परन्तु यह थोड़ा अभ्यास हो तो अधिक ठीक पड़े। नहीं तो अपने... समझ में आया? आहा..हा..! बेचारों को-लोगों को कहाँ के कहाँ... हैरान-हैरान होकर मर जाये बाहर में से। शत्रुंजय की यात्रा की, सम्मेदशिखर की यात्रा की, वहाँ से कल्याण होगा। धूल में भी नहीं, सुन न!

**मुमुक्षु :** अपने भी यात्रा में तो गये थे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह तो शुभभाव होवे तो हो, तथापि वह आदरणीय नहीं, तथापि वह आदरणीय नहीं। अशुभ से बचने के लिये वह भाव है, धर्म नहीं, धर्म नहीं, धर्म नहीं। उसमें धर्म माने, वह श्रद्धा मिथ्या, उसका ज्ञान करे वह ज्ञान भी मिथ्या, और राग है इसलिए आचरण भी मिथ्या, ऐसी बात है। जगत को कठिन पड़े ऐसी है। समझ में आया? ऐ.. मोहनभाई! ऐसा कठिन है। अभी क्या करना इसमें? भजन कर-करके मर गये।

**मुमुक्षु :** .....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हो। वह तो बोलने में कहाँ वहाँ बाधा है?

आहा..हा..! देखो न! मुनि ने कैसा लिखा है? **परमसुखपदार्थी भावयेद्भव्यलोकः।** आहा..हा..! इतने में तो कितना डाला! जो कोई सच्चे सुख का अर्थी हो। सच्चे सुख का। यह सब पैसा-वैसा और धूल में सुख माना, वह तो मूढ़ है। समझ में आया? धूल में कहाँ

सुख था ? पैसे में सुख है ? स्त्री में सुख है ? इज्जत में है ? वह तो सब जड़ है। कल्पना की है कि मुझे सुख है। वह तो मूढ़ है। सुख तो भगवान आत्मा में अन्तर त्रिकाल पड़ा है। आहा..हा..! अतीन्द्रिय आनन्द के सुख का अर्थी। **भव्यसमूह,...** वापस अकेला भव्य नहीं। बहुत भव्य जीव। **शुद्ध आत्मा को एक को भाये।** अकेला भगवान आत्मा नित्यानन्द की पहिचान करके... राग-विकल्प हो, वह भी पर है। शरीर की क्रिया तो जड़ है, वाणी की क्रिया जड़ है। मेरे राग में भी मैं नहीं और उस राग को जाननेवाली एक समय की पर्याय उतना, उसमें भी मैं नहीं। आहा..हा..! पर्याय का वजन नहीं, राग का नहीं और निमित्त का नहीं।

यहाँ तो एक शुद्ध आत्मा त्रिकाल आनन्दकन्द ध्रुव, एक को भावे। उसकी भावना करे अर्थात् एकाग्र हो। भावना अर्थात् कल्पना होगी ? कहो, भीखाभाई! भाई! मार्ग तो ऐसा है। आहा..हा..! यहाँ तो कहते हैं कि हमारी भक्ति करो, तुम्हारा कल्याण होगा। हमें मानों तो कल्याण होगा। (इस बात से) यहाँ वीतराग इनकार करते हैं। वीतराग तो कहते हैं कि हमें मानोगे तो भी तुम्हें राग है। तुम तुम्हारे चैतन्य के स्वभाव के सन्मुख देखकर एकाग्र होओ, उसका नाम धर्म और मुक्ति का उपाय है। कहो, बसन्तीलालजी! गजब बात! ये गाथा हो गयी। लो, २७ हुई न ? अब २८वीं गाथा। यह तो जरा आत्मा का आया, इसलिए थोड़ा स्पष्ट किया है। है तो इसमें पुद्गल की व्याख्या में। २८वीं गाथा।

## गाथा-२८

अण्णणिरावेक्खो जो परिणामो सो सहावपज्जाओ।
खंधसरूवेण पुणो परिणामो सो विहावपज्जाओ।।२८।।

अन्यनिरपेक्षो यः परिणामः स स्वभावपर्यायः।
स्कन्धस्वरूपेण पुनः परिणामः स विभावपर्यायः।।२८।।

पुद्गलपर्यायस्वरूपाख्यानमेतत्। परमाणुपर्यायः पुद्गलस्य शुद्धपर्यायः परम-पारिणामिकभावलक्षणः वस्तुगतषट्प्रकारहानिवृद्धिरूपः अतिसूक्ष्मः अर्थपर्यायात्मकः सादिसनिधनोऽपि परद्रव्यनिरपेक्षत्वाच्छुद्धसद्भूतव्यवहारनयात्मकः। अथवा हि एकस्मिन् समयेऽप्युत्पादव्ययध्रौव्यात्मकत्वात् सूक्ष्मऋजुसूत्रनयात्मकः। स्कन्धपर्यायः स्वजातीय-बन्धलक्षणलक्षितत्वादशुद्ध इति।

---

पर्याय पर-निरपेक्ष जो उसको स्वभाविक जानिये।
जो स्कन्धपरिणति है उसे वैभाविकी पहिचानिये॥२८॥

*गाथार्थ :*—[ अन्यनिरपेक्ष ] अन्य निरपेक्ष ( अन्य की अपेक्षारहित ) [ यः परिणामः ] जो परिणाम, [ सः ] वह [ स्वभावपर्यायः ] स्वभावपर्याय है [ पुनः ] और [ स्कन्धस्वरूपेण परिणामः ] स्कन्धरूप परिणाम, [ सः ] वह [ विभावपर्यायः ] विभावपर्याय है।

*टीका :*—यह, पुद्गलपर्याय के स्वरूप का कथन है।

परमाणुपर्याय, पुद्गल की शुद्धपर्याय है, जोकि परमपारिणामिकभावस्वरूप है, वस्तु में होनेवाली छह प्रकार की हानि-वृद्धिरूप है, अतिसूक्ष्म है, अर्थपर्यायात्मक है और सादि-सान्त होने पर भी परद्रव्य से निरपेक्ष होने के कारण, शुद्धसद्भूतव्यवहारनयात्मक है अथवा एक समय में भी उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक होने से सूक्ष्मऋजुसूत्रनयात्मक है।

**स्कन्धपर्याय, स्वजातीय बन्धरूप लक्षण से लक्षित होने के कारण, अशुद्ध है।**

गाथा-२८ पर प्रवचन

**अण्णणिरावेक्खो जो परिणामो सो सहावपज्जाओ।**
**खंधसरूवेण पुणो परिणामो सो विहावपज्जाओ।।२८।।**

नीचे श्लोक

**पर्याय पर-निरपेक्ष जो उसको स्वभाविक जानिये।**
**जो स्कन्धपरिणति है उसे वैभाविकी पहिचानिये॥२८॥**

यह परमाणु की व्याख्या है। जड़, जड़ का स्वतन्त्रपना बताते हैं। तेरे कारण वे परमाणु नहीं। परमाणु, परमाणु के गुण-पर्याय के कारण हैं। आहा..हा..! तो तू भी उनके कारण नहीं। तू तेरे गुण और पर्याय के तू रहता है, ऐसा कहते हैं। वाडीभाई!

**यह, पुद्गलपर्याय के स्वरूप का कथन है।** टीका है न! पुद्गल की पर्याय, हों! परमाणु की अवस्था। दो प्रकार की। **परमाणुपर्याय, पुद्गल की शुद्धपर्याय है,...** क्या कहते हैं? एक परमाणु है न? रजकण पृथक्-पृथक्। यह एक पाइन्ट इसमें शामिल है, वह पृथक् हो, तो वह **परमाणुपर्याय, पुद्गल की शुद्धपर्याय है, जो कि...** अब आया, देखो! **परमपारिणामिकभावस्वरूप...** परमाणु में और परमपारिणामिकभाव किसलिए लिया?

**मुमुक्षु :** परमाणु की पर्याय ली।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पर्याय को भी परमपारिणामिक कहा। उसमें तो पंचम भाव आया था न? ऐसा कहते हैं। चार भाव उसे कहा है कि पंचम भाव उसे लेना। आत्मा में तो अभी है। ऐसा कहते हैं। परन्तु उस पंचम भाव का अर्थ, जगत में पाँच भाव है जीव में। ऐसे यह पंचम भाव परमाणु में है। आत्मा के त्रिकाली भाव में पंचम भाव है। यहाँ तो पर्याय को ही परमपारिणामिकभावस्वरूप कहा है।

**मुमुक्षु :** द्रव्यसंग्रह में कहा है...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ है न है। अनुभव करता है। आहा..हा..! अभी तो अपनी तो खबर न पड़े। परमाणु जड़, पृथक् कैसे वर्त रहे हैं, इसकी खबर नहीं होती।

कहते हैं, **परमपारिणामिकभावस्वरूप...** एक परमाणु अकेला पृथक्, पर्यायवाला वह परमाणु परमपारिणामिक है। **वस्तु में होनेवाली छह प्रकार की हानि-वृद्धिरूप है, अतिसूक्ष्म है, अर्थपर्यायात्मक है....** वह परमाणु में है, ऐसा कहते हैं। **और सादि-सान्त होने पर भी...** परमाणु की अवस्था एक समय में उत्पन्न होती है और दूसरे समय में नाश होती है, ऐसा **होने पर भी परद्रव्य से निरपेक्ष होने के कारण,...** परमाणु में यह पर्याय उत्पन्न-व्यय होने पर भी, पर की अपेक्षा बिना उत्पन्न-व्यय होती है। देखो।

**शुद्धसद्भूतव्यवहारनयात्मक है...** वह शुद्धनयस्वरूप है न। एक परमाणु, उसकी अकेली पर्याय वह शुद्ध है। सद्भूत अर्थात् अस्ति रखती है। एक समय की पर्याय है, इसलिये व्यवहारस्वरूप है। समझ में आया? जैसे आत्मा में आत्मा के अन्तर में से केवलज्ञान पर्याय होती है, वह पर्याय एक समय की है, सादि-सान्त है परन्तु शुद्ध है। सद्भूत है, व्यवहारनयस्वरूप है। ऐसे सब कितने पहलू सीखना? पण्डितजी!

यह एक परमाणु इसका। ये तो बहुत रजकणों का पिण्ड है। यह कहीं आत्मा नहीं है तथा यह कोई एक चीज़ नहीं है। यह तो बहुत रजकण इकट्ठे होकर ऐसा हुआ है। इसमें का एक रजकण पृथक्, वह शुद्ध परमाणु की पर्याय है। पर्याय अर्थात् अवस्था। उसमें षट्गुण हानि-वृद्धि की पर्याय होने पर भी एक समय की पर्याय सादि-सान्त है। पर्याय उत्पन्न हो और व्यय हो, उत्पन्न हो और व्यय हो, तथापि परद्रव्य से निरपेक्ष होने से, उसे परद्रव्य का सम्बन्ध नहीं; इसलिए शुद्ध कहलाती है। पर का सम्बन्ध नहीं, इसलिए शुद्ध। अपनी है, इसलिए सद्भूत, एक अंश है, इसलिए व्यवहार। अरे! इसमें...

**मुमुक्षु :** इसमें नय का क्या काम है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नय का ज्ञान, इसकी पर्याय कैसा विषय है? द्रव्य कितना विषय है, उसे जानना चाहिए या नहीं? परमाणु त्रिकाली है या पंचम पारिणामिक, वह तो निश्चयनय का विषय है। परमाणु त्रिकाल है, वह निश्चयनय का विषय है। पर्याय है, वह व्यवहारनय का विषय है।

**मुमुक्षु :** .....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह पर्याय है या नहीं उसकी? उसकी पर्याय है न, वह पारिणामिकभाव की पर्याय है। पर्याय है, इसलिए सद्भूत हो गयी, व्यवहार हो गया,

व्यवहार हो गया। परन्तु है तो पारिणामिकभाव की पर्याय। वहाँ उसे कहाँ उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक है। सूक्ष्म बात है। जैनदर्शन का वीतरागी परमात्मा ने कहे हुए मार्ग को समझना भारी कठिन है। सूक्ष्म बात है। और यह समझे बिना चार गति का भ्रमण बदलनेवाला नहीं है। बाहर की क्रिया कर-करके मर जाये। समझ में आया?

**एक समय में भी उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक होने से सूक्ष्मऋजुसूत्रनयात्मक है।** इसे और इसे। एक समय की पर्याय होने से सादि-सान्त, परद्रव्य से निरपेक्ष होने से शुद्धसद्भूतव्यवहार स्वरूप, परन्तु एक समय में तीन इकट्ठे होने से सूक्ष्मऋजुसूत्रनयस्वरूप भी कहने में आता है। **स्कन्धपर्याय, स्वजातीय बन्धरूप लक्षण से लक्षित होने के कारण, अशुद्ध है।** दो भाग है न। पुद्गलपर्याय का स्वरूप दिखाना है। पाठ में विभावपर्याय है न? **खंधसरूवेण पुणो परिणामो सो विहावपज्जाओ** यह स्कन्ध है। यह सब इकट्ठा है। यह सब पिण्ड है।

यह **स्वजातीय बन्धरूप...** परमाणु और परमाणु को एकरूप रहने का। **लक्षण से लक्षित होने के कारण, अशुद्ध है।** लो, विभाव है, ऐसा कहते हैं। वहाँ पाठ में विभाव शब्द डाला है। इसमें अशुद्ध डाला है। आहा..हा..! परमाणु में भी शुद्ध और स्कन्ध में जाये तो अशुद्ध, ऐसे दो प्रकार हैं। ऐसे भगवान आत्मा रागादि में जाये तो भी अशुद्ध है और स्वभाव में आवे तो वह शुद्धपर्याय है। समझ में आया?

## श्लोक-४२

**( अब, टीकाकार मुनिराज, २८वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए श्लोक कहते हैं: )**

( मालिनी )

**पर-परिणति-दूरे शुद्ध-पर्याय-रूपे,**
**सति न च परमाणोः स्कन्धपर्यायशब्दः।**
**भगवति जिननाथे पञ्चबाणस्य वार्ता,**
**न च भवति यथेयं सोऽपि नित्यं तथैव।।४२।।**

(वीरछन्द)

**पर-परिणति से दूर शुद्ध पर्यायरूप ही होने से।**
**परमाणु को शब्दरूप स्कन्ध अवस्था नहिं होवे॥**
**जिस प्रकार जिन-परमेश्वर में कामदेव की बात नहीं।**
**उस प्रकार परमाणु नित्य में कभी शब्द की बात नहीं॥४२॥**

***श्लोकार्थ :*—( परमाणु ) पर-परिणति से दूर, शुद्धपर्यायरूप होने से, परमाणु को स्कन्धपर्यायरूप शब्द नहीं होता। जिसप्रकार भगवान जिननाथ में कामदेव की वार्ता नहीं होती; उसी प्रकार परमाणु भी सदा अशब्द ही होता है ( अर्थात्, परमाणु को भी कभी शब्द नहीं होता )॥४२॥**

## श्लोक-४२ पर प्रवचन

४२ (श्लोक)

**पर-परिणति-दूरे शुद्ध-पर्याय-रूपे,**
**सति न च परमाणोः स्कन्धपर्यायशब्दः।**
**भगवति जिननाथे पञ्चबाणस्य वार्ता,**
**न च भवति यथेयं सोऽपि नित्यं तथैव॥४२॥**

नीचे अर्थ है। **( परमाणु ) पर-परिणति से दूर,...** एक रजकण है, उसमें पर्याय होती है, वह परपरिणति से दूर है, इसलिए **शुद्धपर्यायरूप होने से, परमाणु को स्कन्धपर्यायरूप शब्द नहीं होता।** परमाणु में शब्दरूप स्कन्ध नहीं होता। बहुत परमाणु इकट्ठे हों, तब यह वाणी निकलती है। एक परमाणु में शब्द नहीं। **जिसप्रकार भगवान जिननाथ में कामदेव की वार्ता नहीं होती;...** दृष्टान्त दिया। वीतराग परमात्मा को पाँच इन्द्रिय के भोगों की-काम की वासना नहीं होती। **वार्ता नहीं होती;...** वीतराग पूर्णानन्दस्वरूप। **उसी प्रकार परमाणु भी सदा अशब्द ही होता है ( अर्थात्, परमाणु को भी कभी शब्द नहीं होता )।** कहो समझ में आया?

## गाथा-२९

पोग्गलदव्वं उच्चइ परमाणू णिच्छएण इदरेण।
पोग्गलदव्वो त्ति पुणो ववदेसो होदि खंधस्स।।२९।।

पुद्गल-द्रव्य-मुच्यते परमाणुर्निश्चयेन इतरेण।
पुद्गलद्रव्यमिति पुनः व्यपदेशो भवति स्कन्धस्य।।२९।।

पुद्गलद्रव्यव्याख्यानोपसंहारोऽयम्। स्वभावशुद्धपर्यायात्मकस्य परमाणोरेव पुद्गल-द्रव्यव्यपदेशः शुद्धनिश्चयेन। इतरेण व्यवहारनयेन विभावपर्यायात्मनां स्कन्धपुद्गलानां पुद्गलत्वमुपचारतः सिद्धं भवति।

---

'परमाणु पुद्गल द्रव्य है' यह कथन निश्चयनय करे।
व्यवहारनय की रीति है, वह स्कन्ध को पुद्गल कहे॥२९॥

*गाथार्थ :*—[ निश्चयेन ] निश्चय से [ परमाणुः ] परमाणु को [ पुद्गलद्रव्यम् ] 'पुद्गलद्रव्य' [ उच्यते ] कहा जाता है [ पुनः ] और [ इतरेण ] व्यवहार से [ स्कन्धस्य ] स्कन्ध को [ पुद्गलद्रव्यम् इति व्यपदेशः ] 'पुद्गलद्रव्य', ऐसा नाम [ भवति ] होता है।

*टीका :*—यह, पुद्गलद्रव्य के कथन का उपसंहार है।

शुद्धनिश्चयनय से स्वभावशुद्धपर्यायात्मक परमाणु को ही 'पुद्गलद्रव्य', ऐसा नाम होता है। अन्य ऐसे व्यवहारनय से विभावपर्यायात्मक स्कन्धपुद्गलों को पुद्गलपना, उपचार द्वारा सिद्ध होता है।

---

### गाथा-२९ पर प्रवचन

पोग्गलदव्वं उच्चइ परमाणू णिच्छएण इदरेण।
पोग्गलदव्वो त्ति पुणो ववदेसो होदि खंधस्स।।२९।।

**'परमाणु पुद्गल द्रव्य है' यह कथन निश्चयनय करे।**
**व्यवहारनय की रीति है, वह स्कन्ध को पुद्गल कहे॥२९॥**

**यह, पुद्गलद्रव्य के कथन का उपसंहार है।** अब यहाँ पूरा होता है। **शुद्धनिश्चयनय से स्वभावशुद्धपर्यायात्मक परमाणु को ही...** देखो! **शुद्धनिश्चयनय से स्वभावशुद्ध-पर्यायात्मक परमाणु...** पर से भिन्न, ऐसी निर्मल पर्यायवाले को पुद्गलद्रव्य कहा गया है। उस स्कन्ध को पुद्गल कहना, वह तो उपचारिक है। वे तो सब जड़ इकट्ठे हुए हैं। अकेला परमाणु (हो), उसे स्वभावशुद्धपर्याय, उसे वास्तव में पुद्गलद्रव्य कहा है। आहा..हा..! जैसे आत्मा को पुण्य-पाप के रागरहित ही निर्मल पर्यायसहित आत्मा को आत्मा कहने में आता है। आहा..हा..!

जैसे परमाणु को... कहते हैं कि शुद्धनिश्चय अपनी सत्ता का अस्तित्व। स्वभावशुद्ध -पर्यायस्वरूप होने से से परमाणु को पुद्गलद्रव्य कहते हैं। इसी प्रकार भगवान आत्मा को कैसे कहना आत्मा को? (ऐसे) कि राग और पुण्यरहित स्वभाव शुद्ध है, उसका भान हुआ, ऐसी पर्यायसहित का जो आत्मा, उसे आत्मा कहा जाता है। दया, दान, भक्ति का विकल्प, वह आत्मा नहीं है; वह अनात्मा है। समझ में आया? २३ घण्टे के पाप करे और फिर एक घण्टे रहे थोड़ा सा पढ़े और या आधे घण्टे-घण्टे भक्ति कर ले, हो जायेगा कल्याण! आहा..हा..! ऐसे के ऐसे अवतार अनन्त किये, व्यर्थ गये। एक तो बाहर में मानो धूल के पैसे और इज्जत में सुख मानकर मिथ्यात्व का सेवन किया। मूढ़ता (की)। उसमें फिर यहाँ भक्ति में भाव करके धर्म माना, वह मिथ्यात्व का पोषण है। पण्डितजी!

**मुमुक्षु :** .....भक्ति करे, उसे कम मूढ़ता होगी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं, नहीं। पूरी मूढ़ता है। राग को धर्म माननेवाला पूरी मूढ़ता मिथ्यादृष्टि है।

**मुमुक्षु :** व्यवहार से तो कम है न?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मिथ्यात्व कम-ज्यादा का प्रश्न यहाँ नहीं है।

**मुमुक्षु :** मन्द हो या तीव्र, दोनों एक जाति है न?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** एक जाति है। सूक्ष्म बात है, भाई!

**ऐसा नाम होता है।** देखो! शुद्धनिश्चय से अन्तर वस्तु से देखें तो **स्वभाव-शुद्धपर्यायात्मक परमाणु को ही 'पुद्गलद्रव्य',...** कहते हैं। इस पैसे को, स्त्री, पुत्र के शरीर को, दान, भात को पुद्गल कहना, वह तो व्यवहार है, कहते हैं। क्योंकि इकट्ठे हुए को पुद्गल कहे। अकेला परमाणु उसे वास्तविक पुद्गल कहते हैं। समझ में आया? आहा..हा..!

**मुमुक्षु :** जैसे शुद्ध परमाणु को द्रव्य कहा, वैसे आत्मा को.... ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कहा न, आत्मा की बात हुई न। राग से, पुण्य से, विकल्प से भिन्न। अपनी पर्याय से आत्मा का भान हुआ तो ऐसा शुद्ध आत्मा है, उसे शुद्ध कहा। पर्याय तो अनुभव है, उस सहित को आत्मा कहने में आता है। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** शुद्ध परिणमे, तब त्रिकाल शुद्ध....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** शुद्ध परिणमे, तब त्रिकाल शुद्ध का भान हुआ कहलाये न! इसके बिना कहाँ से हुआ।

**मुमुक्षु :** उस पर्याय सहित।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पर्याय सहित त्रिकाली शुद्धता। आत्मा उसे कहते हैं, क्योंकि शुद्धता की पर्याय, उसका अपना स्वभाव है। त्रिकाली स्वभाव और एक समय का पर्याय स्वभाव शुद्ध, उसे आत्मा कहने में आता है। यह आया न? अनुभूति से भिन्न। नहीं कहा? राग आदि से भिन्न, अनुभूति से भिन्न, तो अनुभूति की पर्यायवाला जो आत्मा, उसे आत्मा कहने में आता है। कितना बोल है? २९। गजब बातें, भाई! आहा..हा..!

भगवान आत्मा उसे कहते हैं कि जिसे शरीर, वाणी, मन, दया, दान, व्रत के विकल्प से भिन्न अनुभूति में वह विकल्प नहीं आता। अनुभव में तो वह आत्मा आता है। ऐसी अनुभूति से भिन्न होने के कारण दूसरे सबको पुद्गल कहा जाता है। अनुभूतिसहित आत्मा को आत्मा कहा जाता है। क्या हो? जगत लुटाया है। एक तो संसार के पाप के नाम से पूरी जिन्दगी लुटाता है, उसमें धर्म के नाम से दूसरे प्रकार से लुटता है। आहा..हा..! अरे रे! आत्मा का क्या होगा? यहाँ से निकलकर कहाँ जायेगा? और इसके सच्चे भाव या मिथ्या क्या है, इसकी खबर नहीं होती। निर्धन, अनाथ, अरक्षक, दुःखी है। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** इसीलिए कहा है, आत्मा को शीघ्रता से...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पराधीन है, पराधीन।

**'पुद्गलद्रव्य', ऐसा नाम होता है। अन्य ऐसे व्यवहारनय से विभावपर्यायात्मक स्कन्धपुद्गलों को पुद्गलपना, उपचार द्वारा सिद्ध होता है।** लो, समझ में आया?

## श्लोक-४३

**( अब, २९वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज, तीन श्लोक कहते हैं — )**

( मालिनी )

**इति जिनपतिमार्गाद् बुद्धतत्त्वार्थजातः,**
**त्यजतु पर-मशेषं चेतनाचेतनं च।**
**भजतु परम-तत्त्वं चिच्चमत्कार-मात्रं,**
**परविरहितमन्तर्निर्विकल्पे समाधौ ।।४३।।**

---

(वीरछन्द)

**इस प्रकार जिनवचनों द्वारा जानो तुम तत्त्वार्थ समूह।**
**जो अपने से भिन्न सदा, त्यागो वह चित्त-अचित्त समूह॥**
**अन्तरंग में निर्विकल्प होकर समाधि में लीन रहो।**
**पर से जो है भिन्न परम चित्-चमत्कार निज तत्त्व भजो॥४३॥**

**श्लोकार्थ :—इस प्रकार जिनपति के मार्ग द्वारा तत्त्वार्थसमूह को जानकर, पर ऐसे समस्त चेतन और अचेतन को त्यागो; अन्तरंग में निर्विकल्प समाधि में परविरहित ( पर से रहित ) चित्चमत्कारमात्र परमतत्त्व को भजो॥४३॥**

श्लोक-४३ पर प्रवचन

**( अब, २९वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज, तीन श्लोक कहते हैं — )**

**इति जिनपतिमार्गाद् बुद्धतत्त्वार्थजातः,**
**त्यजतु पर-मशेषं चेतनाचेतनं च।**
**भजतु परम-तत्त्वं चिच्चमत्कार-मात्रं,**
**परविरहितमन्तर्निर्विकल्पे समाधौ।।४३।।**

४३, इसका नीचे अर्थ है। है इस ओर? ६२ पृष्ठ पर।

**इस प्रकार जिनपति के मार्ग द्वारा...** वीतराग भगवान का यह मार्ग है, कहते हैं। जिनपति, जिनेश्वरदेव वीतराग त्रिलोकनाथ तीर्थंकर परमात्मा के **मार्ग द्वारा तत्त्वार्थसमूह को जानकर,...** इन भगवान के कहे हुए ऐसे तत्त्व को जानकर। अज्ञानी ने कहे हुए, वे नहीं। तत्त्वसमूह है न? जीव, अजीव, पुण्य-पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। **जिनपति के मार्ग द्वारा...** वीतराग कथित, सर्वज्ञ ज्ञान में आयी हुई बात। उनके कहे हुए **तत्त्वार्थसमूह को जानकर,...** देखो, पहले जाने तो सही कि आत्मा शुद्ध है, रागादि अशुद्ध है, कर्म जड़ है, वाणी, शरीर अजीव है, उन्हें और मुझे कोई सम्बन्ध नहीं है। यह पैसा और स्त्री, पुत्र का मेरे साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। वे तो अजीव हैं, जगत की जड़ चीज़ है। वे द्रव्य अपनेरूप से होकर रहे हैं। शरीर, शरीर की अवस्थारूप से जड़ होकर रहा हुआ है, वह कहीं आत्मा की पर्याय होकर शरीर रहा हुआ नहीं है। पैसा अजीव होकर रहा हुआ है, वह आत्मा की दशा होकर नहीं रहा है, आत्मा का होकर नहीं रहा है। समझ में आया? आहा..हा..! जैसे जो होकर रहे हैं, वैसे उन्हें बराबर जानना, ऐसा कहते हैं।

यह शरीर तो अजीव होकर रहा हुआ है। आत्मा का होकर रहा है? आत्मा अरूपी है तो यह अरूपी हो जाये। यह तो रूपी होकर रहा हुआ, जड़ होकर रहा हुआ है। लक्ष्मी जड़ होकर रही हुई है, वाणी जड़ होकर रही हुई है। ऐसे जड़ के तत्त्व को उस रीति से रहे हुए जानकर; आत्मा, आत्मा का होकर रहा हुआ है। इसी प्रकार ये पुण्य और पाप के भाव

होकर रहे हैं, वे आस्रव, बन्ध, राग और दु:ख है। उनसे रहित भगवान आत्मा रागरहित होकर रहा, वह आत्मा है।

**जिनपति के मार्ग द्वारा...** वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर ने जो मार्ग कहा, उस **तत्त्वार्थसमूह को जानकर,...** अन्यमत में, जैन के अतिरिक्त (में) ऐसे तत्त्व नहीं होते। वीतरागमार्ग के अतिरिक्त कहीं यह बात नहीं होती। समझ में आया? **पर ऐसे समस्त चेतन और अचेतन को त्यागो;...** देखो! परचेतन देव-गुरु का आत्मा चेतन, स्त्री-पुत्र का आत्मा चेतन, उसे दृष्टि में से त्यागो। वे मुझमें नहीं। **पर ऐसे समस्त चेतन...** पर हैं न चेतन? सिद्धभगवान आत्मा से पर हैं, अरिहन्त भगवान इस आत्मा से पर हैं। आहा..हा..! पंच परमेष्ठी पर आत्मा हैं। इसके कहाँ हैं?

**ऐसे समस्त चेतन और अचेतन को...** राग आदि पुद्गल को दृष्टि में से त्यागो। आहा..हा..! जो तुझमें नहीं, उसकी दृष्टि छोड़ - ऐसा कहते हैं। तुझमें है, वहाँ दृष्टि को स्थापित कर। इस अस्तित्व में तेरा अस्तित्व है। आहा..हा..! अभी तो इतनी त्याग की व्याख्या की। यह त्याग है। बाहर का त्याग स्त्री, पुत्र छोड़कर बैठे और त्यागी हो गये। धूल में भी वह त्याग नहीं है। अन्तर में इस आत्मा के अतिरिक्त सब आत्मायें निगोद से लेकर सिद्ध परमात्मा, अरिहन्त, पंच परमेष्ठी आदि मेरे नहीं हैं; वे मुझसे रहे हुए नहीं हैं; वे रहे हैं, इसलिए मुझे कुछ लाभ नहीं है। समझ में आया? इसमें किसे बाकी रखा? **समस्त चेतन और अचेतन को त्यागो;...** इसमें किसे बाकी रखा?

**मुमुक्षु :** सब आ गये।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आ गये। गिरनार पर्वत, सम्मेदशिखर, सब आ गया? भगवान का समवसरण और भगवान स्वयं। भगवान ने कहे हुए तत्त्वार्थ के समूह को जानकर, पर **ऐसे समस्त चेतन और अचेतन को त्यागो;...** अर्थात् उनके प्रति लक्ष्य छोड़ दो। वे कोई तेरे नहीं हैं, तुझमें नहीं है, तू वहाँ नहीं है। आहा..हा..! गजब काम।

अब तू कौन है? **अन्तरंग में निर्विकल्प समाधि में परविरहित ( पर से रहित ) चित्चमत्कारमात्र परमतत्त्व को भजो।** अन्तरंग में। अन्तर अंग में - वस्तु में। निर्विकल्प भेदरहित अभेद वस्तु भगवान आत्मा। निर्विकल्प समाधि शान्ति **में परविरहित...** शान्ति के

समय में, ऐसा कहते हैं। **अन्तरंग में निर्विकल्प समाधि में परविरहित ( पर से रहित )...** विकल्प से रहित **चित्चमत्कारमात्र परमतत्त्व को... अन्तरंग में निर्विकल्प समाधि में परविरहित ( पर से रहित ) चित्चमत्कारमात्र परमतत्त्व को भजो।** गजब बात, भाई! क्या कहा? अभी तो अर्थ समझना मुश्किल पड़े।

**जिनपति के मार्ग द्वारा...** वीतराग परमेश्वर सर्वज्ञ ने कहा हुआ मार्ग, उसके **तत्त्वार्थसमूह को जानकर, पर ऐसे समस्त चेतन और अचेतन को...** एक रजकण और राग सब अचेतन को छोड़ो। अब क्या करना? **अन्तरंग में निर्विकल्प समाधि में...** राग में तो पर है, ऐसी दृष्टि थी। अब समाधि में रागरहित अन्तर्मुख होकर अभेद समाधि में परविरहित-राग और विकल्प से रहित-ऐसा चित्चमत्कारमात्र तत्त्व भगवान आत्मा को भजो। उसमें अन्दर एकाग्र होओ। वह मुक्ति का मार्ग-धर्म है। भीखाभाई! गजब बात, भाई! यह तो आत्मा को भजो, ऐसा कहते हैं।

**मुमुक्षु :** जी, जी, प्रभु बराबर सत्य है। भगवान! आप बोलो वह तो....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परन्तु यह अन्दर है या नहीं? यह पाठ कहाँ यहाँ का है? यह तो कुन्दकुन्दाचार्य का है। दो हजार वर्ष पहले के कुन्दकुन्दाचार्य (कहते हैं) और अनन्त काल से ऐसा मुनि कहते आये हैं। यह तो नियमसार शास्त्र है। कुन्दकुन्दाचार्य निमित्त थे। आहा..हा..!

**मुमुक्षु :** वे तो ऐसा कहते हैं, हम तो आपको पहिचानते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह तो इसमें है, ये किसका है, ऐसा कहना है। आहा..हा..!

दो बातें हुई। अब वापस दो की उड़ाते हैं। भगवान! तुझे करना करना हो, हित करना हो, धर्म करना हो तो रागादि परिणाम सब अचेतन हैं। भगवान की भक्ति का भाव / राग, वह अचेतन है, उसका भी लक्ष्य छोड़। मेरे शरीर के परमाणु अच्छे रहें तो धर्म हो, यह भी लक्ष्य छोड़ दे।

**अन्तरंग में निर्विकल्प समाधि में...** अर्थात् अन्तर में रागरहित शान्ति और श्रद्धा की दशा में। **परविरहित...** रागरहित अपना चैतन्यचमत्कार तत्त्व, ऐसे **परमतत्त्व को भजो।** चैतन्य चित्चमत्कारमात्र। इस भगवान आत्मा में तो अकेला ज्ञानमात्र चमत्कार स्वभाव है।

बाकी कोई दया, दान व्रत विकल्प, वे वस्तु में नहीं हैं। समझ में आया ? परन्तु गजब काम, भाई ! सीधे यह ? पहला उपाय क्या होगा ? यह उपाय है। इससे पहले, पहले कुछ करना या नहीं ? सीधे यह ? यह ही है।

**मुमुक्षु :** .....तत्त्वार्थ को जानना।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** जानना। आहा..हा..!

राग का क्या स्वरूप है ? वस्तु का क्या स्वभाव है ? धर्म की दशा होती है तो, उसका स्वरूप क्या है ? निमित्तरूप से विकार में कौन चीज़ है ? परवस्तु क्या है ? स्ववस्तु क्या है ? उसे बराबर भगवान के कहे हुए मार्ग से जानना चाहिए। जानकर अचेतन का त्याग और चेतन का ग्रहण (करना) - ऐसा कहते हैं। चैतन्य भगवान आनन्दस्वरूप का भजन कर अर्थात् उसमें एकाकार हो और पर का लक्ष्य छोड़ दे। तब धर्म की शुरुआत होगी। लो, यहाँ तक आया। फिर तो कहते हैं, चेतन और अचेतन के दोनों के विकल्प भी मुनि को -धर्मी को नहीं होते। यह चेतन, यह तो शुरुआत में विचार आता है कि मैं यह चेतन हूँ और रागादि अचेतन हैं। पश्चात् तो दो के विकल्प भी अभ्यास से—अन्तर के धर्म के ध्यान के अभ्यास से वे दो विकल्प नहीं होते। यह विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)